AD EDUXIAN JOURNAL
A Quarterly Multidisciplinary Blind Peer Reviewed & Refereed Online International Journal
Google Scholar Indexing PIF:1.048(I2OR) & 3.125 (IIFS)
Vol (2), Issue (3), Oct-Dec 2025 *ISSN: 3048-7951*

झारखंड में औद्योगीकरण और भूमि अधिग्रहण की राजनीति

डेगलाल महतो[1]

DOI: https://doi.org/ 10.5281/zenodo.19615365
Review: 06/12/2025 **Acceptance: 07/12/2025** **Publication: 30/12/2025**

सारांश
झारखंड प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध राज्य होने के बावजूद सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन की चुनौती का सामना कर रहा है। इस शोधपत्र में औद्योगीकरण और भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया का राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में यह दर्शाया गया है कि औद्योगिक विकास ने जहाँ एक ओर आर्थिक वृद्धि और अवसंरचनात्मक विस्तार को बढ़ावा दिया है, वहीं दूसरी ओर स्थानीय आदिवासी समुदायों के विस्थापन, आजीविका संकट और सांस्कृतिक विघटन को भी जन्म दिया है। डेविड हार्वे की "Accumulation by Dispossession" तथा "Resource Curse Theory" के सैद्धांतिक ढांचे के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि संसाधनों की प्रचुरता के बावजूद विकास का लाभ समान रूप से वितरित नहीं हो पाया है। शोध में ऐतिहासिक, नीतिगत एवं आंदोलनात्मक आयामों का विश्लेषण करते हुए यह निष्कर्ष निकाला गया है कि वर्तमान विकास मॉडल असमान और बहिष्करणकारी है। अतः समावेशी एवं सतत विकास सुनिश्चित करने के लिए नीतिगत सुधार, पारदर्शिता, तथा स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है।

☞ झारखंड में औद्योगीकरण, भूमि अधिग्रहण और विस्थापन की राजनीति: एक समालोचनात्मक विश्लेषण

मुख्य शब्द: औद्योगीकरण, भूमि अधिग्रहण, विस्थापन, आदिवासी समुदाय, झारखंड, समावेशी विकास|

झारखंड भारत के उन विशिष्ट क्षेत्रों में से एक है जहाँ प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता और सामाजिकआर्थिक - अस्तित्व देखने को मिलता है। कोयला-पिछड़ेपन का विरोधाभासी सह, लौह अयस्क, बॉक्साइट तथा अन्य खनिजों से समृद्ध यह क्षेत्र औद्योगिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है, किंतु इसके समानांतर विकास की प्रक्रिया ने यहाँ के मूल निवासियोंको गहरे संकट में डाल दिया है। औद्योगीकरण को –विशेषकर आदिवासी समुदायों– सामान्यतः आर्थिक वृद्धि, रोजगार सृजन और बुनियादी ढाँचे के विकास का साधन माना जाता है, परंतु झारखंड के संदर्भ में यह अवधारणा की जटिल बहस में परिवर्तित हो जाती है "विकास बनाम विस्थापन", जहाँ एक ओर राज्य और कॉर्पोरेट क्षेत्र आर्थिक प्रगति के तर्क प्रस्तुत करते हैं, वहीं दूसरी ओर स्थानीय समुदाय अपने अस्तित्व, पहचान और अधिकारों के लिए संघर्षरत दिखाई देते हैं।1

झारखंड में भूमि केवल उत्पादन का साधन नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक पहचान, धार्मिक आस्था और सामुदायिक जीवन का मूल आधार है। आदिवासी समाज में भूमि का संबंध व्यक्तिगत स्वामित्व से

[1]शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, राधा गोविन्द विश्वविद्यालय, रामगढ़, झारखंड, भारत|

अधिक सामुदायिक अधिकार और प्रकृति के साथ सहअस्तित्व की अवधारणा से जुड़ा हुआ है-, जिसके कारण भूमि अधिग्रहण केवल भौतिक संसाधनों का हस्तांतरण नहीं, बल्कि एक गहरे सांस्कृतिक विघटन का कारण बनता है। इस संदर्भ में डेविड हार्वे)2005) द्वारा प्रतिपादित "Accumulation by Dispossession" की अवधारणा अत्यंत प्रासंगिक हो जाती है, जिसके अनुसार पूंजीवादी विकास के लिए संसाधनों का अधिग्रहण और हाशिए के समुदायों का विस्थापन एक अनिवार्य प्रक्रिया के रूप में उभरता है।2 झारखंड में यह प्रक्रिया स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, जहाँ औद्योगिक विकास की आड़ में स्थानीय समुदायों के अधिकारों का ह्रास होता है और संसाधनों का नियंत्रण राज्य एवं कॉर्पोरेट समूहों के हाथों में केंद्रित हो जाता है।

इसके अतिरिक्त, "Resource Curse Theory" यह इंगित करती है कि प्राकृतिक संसाधनों की अधिकता विकास का आधार बनने के बजाय अक्सर राजनीतिक अस्थिरता, आर्थिक असमानता और सामाजिक संघर्ष को जन्म देती है।3 झारखंड इसका एक सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करता है, जहाँ खनिज संपदा की प्रचुरता के बावजूद व्यापक गरीबी, बेरोजगारी और विस्थापन की समस्या बनी हुई है। इस प्रकार, झारखंड में औद्योगीकरण और भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया को केवल आर्थिक दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि एक बहुआयामी राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिघटना के रूप में समझना आवश्यक है, जो सत्ता संरचनाओं, नीतिगत निर्णयों और स्थानीय समुदायों के संघर्षों के बीच जटिल अंतर्संबंधों को उजागर करती है।

झारखंड में औद्योगीकरण की ऐतिहासिक प्रक्रिया औपनिवेशिक शासन के दौरान प्रारंभ होती है, जब ब्रिटिश प्रशासन ने इस क्षेत्र के खनिज संसाधनों के दोहन को अपनी आर्थिक नीतियों का केंद्रीय तत्व बनाया। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में धनबाद और झरिया क्षेत्रों में कोयला खनन की शुरुआत ने न केवल स्थानीय अर्थव्यवस्था को परिवर्तित किया, बल्कि इस क्षेत्र को वैश्विक औद्योगिक नेटवर्क से भी जोड़ दिया।4 औपनिवेशिक काल में औद्योगीकरण का उद्देश्य स्थानीय विकास नहीं था, बल्कि ब्रिटिश साम्राज्य की औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना था, जिसके परिणामस्वरूप संसाधनों का असमान दोहन और स्थानीय समुदायों का व्यापक शोषण हुआ। इस प्रक्रिया ने भूमि स्वामित्व के पारंपरिक ढाँचों को कमजोर किया और एक ऐसी आर्थिक संरचना को जन्म दिया जिसमें स्थानीय लोगों की भूमिका सीमित होकर श्रमिक तक रह गई।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत सरकार ने औद्योगिक विकास को राष्ट्रीय प्रगति का प्रमुख साधन मानते हुए भारी उद्योगों के विकास पर बल दिया। इस संदर्भ में झारखंड में बोकारो स्टील प्लांट (तत्कालीन बिहार), टाटा स्टील और कोल इंडिया जैसी परियोजनाओं ने औद्योगिक आधार को मजबूत किया। इन परियोजनाओं ने (जमशेदपुर) राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया, लेकिन इसके साथ ही बड़े पैमाने पर भूमि अधिग्रहण और विस्थापन की समस्या को भी जन्म दिया।5 स्थानीय समुदायों को पर्याप्त मुआवजा और पुनर्वास न मिलने के कारण सामाजिक असंतोष बढ़ा और विकास के प्रति अविश्वास की भावना उत्पन्न हुई।

वर्ष 2000 में झारखंड के गठन के बाद औद्योगीकरण की प्रक्रिया को नई दिशा और गति मिली। राज्य सरकार ने निवेश को आकर्षित करने के लिए विभिन्न औद्योगिक नीतियाँ लागू कीं, जिनमें निजी क्षेत्र की भागीदारी को बढ़ावा दिया गया। इस दौर में भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया अधिक संगठित और आक्रामक हो गई, क्योंकि सरकार ने भूमि को के रूप में प्रस्तुत किया और कॉर्पोरेट निवेश को प्राथमिकता दी। माइकल ”विकास के संसाधन“) लेवियन2018) के अनुसार, यह प्रक्रिया का उदाहरण प्रस्तुत करती है ”विकास के बिना बेदखली“, जहाँ भूमि अधिग्रहण तो होता है, लेकिन स्थानीय समुदायों को अपेक्षित आर्थिक और सामाजिक लाभ प्राप्त नहीं होते।6 इस प्रकार, झारखंड में औद्योगीकरण का ऐतिहासिक विकास यह दर्शाता है कि विकास की प्रक्रिया हमेशा समावेशी नहीं रही, बल्कि इसमें सत्ता, संसाधनों और लाभों का असमान वितरण निहित रहा है।

भारत में भूमि अधिग्रहण की नीतियाँ औपनिवेशिक विरासत से प्रभावित रही हैं, जहाँ 1894 का भूमि अधिग्रहण अधिनियम राज्य को व्यापक अधिकार प्रदान करता था कि वह के नाम पर किसी भी ”सार्वजनिक उद्देश्य“ भूमि का अधिग्रहण कर सके। इस अधिनियम की सबसे बड़ी आलोचना यह रही कि इसमें स्थानीय समुदायों की सहमति, पुनर्वास और उचित मुआवजे के प्रावधानों का अभाव था, जिसके कारण झारखंड जैसे क्षेत्रों में इसका व्यापक दुरुपयोग हुआ।7 इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखते हुए 2013 में Right to Fair Compensation and Transparency in Land Acquisition, Rehabilitation and Resettlement Act, 2013 लागू किया गया, जिसने मुआवजा, पुनर्वास और पारदर्शिता को कानूनी रूप से अनिवार्य बनाने का प्रयास किया।

हालाँकि, इस अधिनियम के बावजूद व्यावहारिक स्तर पर कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं। एक ओर, प्रशासनिक प्रक्रियाओं की जटिलता और भ्रष्टाचार इसके प्रभावी क्रियान्वयन में बाधा उत्पन्न करते हैं, वहीं दूसरी ओर, “सार्वजनिक उद्देश्यकी व्याख्या अभी भी अस्पष्ट बनी हुई है ”, जिसका उपयोग निजी औद्योगिक परियोजनाओं के पक्ष में किया जाता है। झारखंड के संदर्भ में Chotanagpur Tenancy Act और Santhal Pargana Tenancy Act विशेष महत्व रखते हैं, क्योंकि ये आदिवासी भूमि की सुरक्षा के लिए बनाए गए हैं और बाहरी व्यक्तियों को भूमि हस्तांतरण पर रोक लगाते हैं।

किन्तु औद्योगिक विकास के दबाव में इन कानूनों में संशोधन के प्रयास बारबार किए गए हैं-, जिससे यह स्पष्ट होता है कि कानूनी ढांचा केवल संरक्षण का माध्यम नहीं, बल्कि राजनीतिक संघर्ष का क्षेत्र भी है।8 इस संदर्भ में यह तर्क महत्वपूर्ण है कि कानून की प्रभावशीलता केवल उसके प्रावधानों पर निर्भर नहीं करती, बल्कि उसके क्रियान्वयन और राजनीतिक इच्छाशक्ति पर भी निर्भर करती है। झारखंड में भूमि अधिग्रहण की नीतियाँ इस बात को स्पष्ट करती हैं कि राज्य और कॉर्पोरेट हितों के बीच गठजोड़ अक्सर स्थानीय समुदायों के अधिकारों को कमजोर कर देता है, जिससे विकास की प्रक्रिया असंतुलित और विवादास्पद बन जाती है।

झारखंड में भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया ने व्यापक सामाजिक और राजनीतिक संघर्ष को जन्म दिया है, जो केवल आर्थिक हितों तक सीमित नहीं, बल्कि पहचान, अधिकार और अस्तित्व के प्रश्नों से भी जुड़ा हुआ है। औद्योगिक

परियोजनाओं के कारण लाखों लोग विस्थापित हुए हैं, जिनमें अधिकांश आदिवासी और अन्य हाशिए के समुदाय शामिल हैं।7 यह विस्थापन केवल भौतिक स्थानांतरण नहीं है, बल्कि सामाजिक संरचना, पारंपरिक ज्ञान प्रणाली और सांस्कृतिक पहचान के विघटन का कारण बनता है।

इस संदर्भ में विभिन्न जन आंदोलनों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिन्होंने भूमि अधिग्रहण के खिलाफ संगठित प्रतिरोध प्रस्तुत किया। कोयलकारो परियोजना और नेतरहाट फायरिंग रेंज जैसे आंदोलनों ने यह दर्शाया कि -स्थानीय समुदाय अपने अधिकारों के लिए संगठित होकर राज्य और कॉर्पोरेट शक्ति को चुनौती दे सकते हैं।) रामचंद्र गुहा1999) के अनुसार, ऐसे आंदोलन का उदाहरण हैं ”सबाल्टर्न राजनीति“, जहाँ हाशिए के समूह अपनी आवाज़ को संगठित रूप में प्रस्तुत करते हैं और सत्ता संरचनाओं को चुनौती देते हैं।9

राजनीतिक दलों की भूमिका इस प्रक्रिया में द्वंद्वात्मक रही है। एक ओर वे स्थानीय समुदायों के हितों की बात करते हैं, वहीं दूसरी ओर सत्ता में आने के बाद औद्योगिक परियोजनाओं को समर्थन देते हैं। यह राजनीतिक “ की प्रवृत्ति को दर्शाता है ”अवसरवाद, जहाँ विकास के नाम पर नीतिगत निर्णय लिए जाते हैं, लेकिन उनके सामाजिक प्रभावों की उपेक्षा की जाती है। माइकल लेवियन)2018) के अनुसार, राज्य और कॉर्पोरेट क्षेत्र के बीच गठजोड़ भूमि अधिग्रहण को आसान बनाता है, लेकिन इससे लोकतांत्रिक प्रक्रिया की पारदर्शिता और वैधता पर प्रश्नचिह्न लगते हैं।10

झारखंड में औद्योगीकरण और भूमि अधिग्रहण की राजनीति का समग्र विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि वर्तमान विकास मॉडल में गंभीर संरचनात्मक असंतुलन मौजूद है। आर्थिक वृद्धि और औद्योगिक विस्तार को प्राथमिकता देने के कारण सामाजिक न्याय, पर्यावरणीय संतुलन और सांस्कृतिक संरक्षण जैसे महत्वपूर्ण आयामों की उपेक्षा हुई है। यह स्थिति इस बात की ओर संकेत करती है कि विकास की अवधारणा को पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता है, जिसमें केवल आर्थिक संकेतकों के बजाय मानव विकास, सामाजिक समानता और पर्यावरणीय स्थिरता को भी समान महत्व दिया जाए।

इस संदर्भ में की अवधारणाएँ अत्यंत प्रासंगिक हो जाती हैं ”सतत विकास“ और ”समावेशी विकास“, जो यह सुनिश्चित करती हैं कि विकास की प्रक्रिया में सभी वर्गों की भागीदारी हो और उसके लाभ समान रूप से वितरित हों। नीतिगत स्तर पर यह आवश्यक है कि भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया में स्थानीय समुदायों की वास्तविक भागीदारी सुनिश्चित की जाए, पूर्व सहमति को अनिवार्य बनाया जाए और पुनर्वास तथा मुआवजा प्रणाली को प्रभावी और पारदर्शी बनाया जाए।

अंततः, झारखंड का अनुभव यह दर्शाता है कि औद्योगीकरण तभी सार्थक और टिकाऊ हो सकता है, जब वह सामाजिक न्याय, लोकतांत्रिक भागीदारी और पर्यावरणीय संतुलन के सिद्धांतों पर आधारित हो। अन्यथा, यह केवल आर्थिक असमानताओं और सामाजिक संघर्षों को बढ़ावा देगा, जो दीर्घकालीन विकास के लिए घातक सिद्ध हो सकता है।

संदर्भ सूची :

1. ऑटी, रिचर्ड एमरूटलेज .खनिज अर्थव्यवस्थाओं में सतत विकास ., 1993, पृ .45.
2. भट्टाचार्य, दीपंकर ."भारत में भूमि अधिग्रहण और मुआवजा." इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, खंड 45, संख्या 12, 2010, पृ .25.
3. सेर्निया, माइकल एमविश्व बैंक .विस्थापित जनसंख्या का जोखिम और पुनर्निर्माण मॉडल ., 1997, पृ .18.
4. फर्नांडीस, वाल्टर ."सिंगूर और विस्थापन परिदृश्य." इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 2007, पृ .32.
5. गुहा, रामचंद्रपार :अशांत वन .िस्थितिक परिवर्तन और किसान प्रतिरोधऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ., 1999, पृ .67.
6. हार्वे, डेविडऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस .नवउदारवाद का संक्षिप्त इतिहास ., 2005, पृ .159.
7. कमार, के ."झारखंड में औद्योगिक विकास." विकास अध्ययन जर्नल, 2015, पृ .74.
8. लेवियन, माइकलऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस .विकास के बिना बेदखली ., 2018, पृ .112.
9. राय, तपनकैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस .विश्व अर्थव्यवस्था में भारत ., 2012, पृ .203.
10. ज़ाक्सा, वीरभारतराज्य ., समाज और जनजातियाँपियर्सन ., 2008, पृ .91.